क्षेत्रीय दलों का उदय इतना खराब क्यों नहीं है ?
Why the Rise of Regional Parties Isn't So Bad

ऐडम ज़िएगफ़ैल्ड
Adam Ziegfeld
October 11, 2010

पिछले पंद्रह वर्षों में क्षेत्रीय दलों का उदय भारत की चुनावी राजनीति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों में से एक रहा है. तीस वर्ष पहले राष्ट्रीय परिदृश्य में ये दल छोटे खिलाड़ी थे, लेकिन आज राष्ट्रीय स्तर की सरकारों में इनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई है. अधिकांश प्रेक्षक क्षेत्रीय दलों के उदय को संदेह की दृष्टि से देखते हैं. इस प्रकार के संदेह का एक कारण यह है कि ये लोग महसूस करते हैं कि क्षेत्रीय दल संकीर्ण क्षेत्रीय सोच रखते हैं और इससे भारत की एकता को खतरा हो सकता है. संदेह का दूसरा कारण यह है कि इन लोगों को लगता है कि क्षेत्रीय दलों के कारण अस्थिरता बनी रहती है. परंतु इन दोनों ही दावों के समर्थन में दिए गए प्रमाण बहुत ठोस नहीं हैं. क्षेत्रीय दलों के नकारात्मक प्रभाव को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है.

कई लोग मानते हैं कि क्षेत्रीय दलों की सफलता से अलगाववादी गतिविधियों का खतरा बढ़ जाता है या फिर राष्ट्र निर्माण की सोच ही विफल हो सकती है. इस विश्वास का आधार यह धारणा है कि मतदाता क्षेत्रीय दलों के लिए मतदान इसलिए करते हैं कि वे भारतीय राष्ट्र के बजाय अपनी अस्मिता क्षेत्रीय दलों के साथ जोड़कर अधिक गौरवान्वित महसूस करते हैं. यदि उपलब्ध साक्ष्य को देखें तो यह धारणा निराधार लगती है. 2004 के भारतीय राष्ट्रीय चुनावों के अध्ययन में लोगों से यह पूछा गया था कि वे इस कथन से सहमत हैं या नहीं: "हमें पहले अपने क्षेत्र के प्रति वफ़ादार होना चाहिए और फिर देश के प्रति." यद्यपि अधिकांश लोगों ने इस कथन पर अपनी सहमति प्रकट की, लेकिन अपने मतदान की पसंदगी में उन्होंने क्षेत्र और देश को आपस में जोड़कर नहीं देखा. भारत में सभी बड़े राज्यों में राष्ट्रीय दलों की तुलना में क्षेत्रीय दलों के प्रति वफ़ादार लोगों की संख्या अधिक होने की संभावना नहीं है. इसलिए उक्त कथन के समर्थन में खड़े होने वाले लोगों का प्रतिशत क्षेत्रीय दलों की उपस्थिति से साथ मेल नहीं खाता. दूसरे शब्दों में जिन क्षेत्रों में अनेक मतदाताओं ने अपने क्षेत्र के प्रति वफ़ादारी प्रकट की है वहाँ आवश्यक नहीं है कि क्षेत्रीय दलों ने चुनाव में भारी जीत हासिल की हो.

यह धारणा कि क्षेत्रीय दल भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति कम निष्ठावान् हैं, बहुत-सी मुश्किलें पैदा कर देता है, क्योंकि इससे यह आभास होता है कि सभी क्षेत्रीय दलों की सोच में समानता है.1990 के दशक में जब बड़ी संख्या में क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ, तो उनके

वास्तविक स्रोत का पता लगाने के लिए हमें कॉन्ग्रेस या अब मृतप्राय जनता दल जैसी राष्ट्रीय पार्टियों की ओर ही देखना होगा. इनमें से राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस पार्टी या समाजवादी पार्टी जैसी बहुत सी पार्टियाँ तो क्षेत्रीय शिकायतों, माँगों या क्षेत्रीय अस्मिता को कोई खास महत्व नहीं देतीं और खुलकर राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं की बात करती हैं और उन्हें महत्व भी देती हैं. पश्चिम के अनेक लोकतांत्रिक देशों में एक खास तरह से ही राज्य और क्षेत्र के बीच या एक क्षेत्रविशेष के अल्पसंख्यक जातीय दल और शेष देश में फैले हुए बहुसंख्यक जातीय दल के बीच राजनैतिक संघर्षों के कारण क्षेत्रीय दलों का उदय होता है. भारत के अधिकांश क्षेत्रीय दल इस साँचे में फ़िट नहीं बैठते, क्योंकि इनका उदय राज्यों के *भीतर* ही राजनैतिक संघर्षों के कारण होता है. जैसे असम में असमी हिंदुओं और बंगाली विस्थापितों के बीच,पंजाब में सिक्खों और हिंदुओं के बीच और आंध्र प्रदेश में खम्मा और रेड्डी समुदायों के बीच.

निश्चय ही भारत की एकता और राष्ट्रीय अस्मिता पर खतरा तो मंडरा रहा है,लेकिन अलगाववाद ही असली समस्या है. परंतु अकाली दल के कुछ गुटों को छोड़कर चुनावी राजनीति में सक्रिय राजनैतिक दलों से गंभीर अलगाववाद का खतरा शायद ही कभी होता है. राजनीतिज्ञ शायद ही कभी अलगाववादी बने हों, लेकिन अलगाववादी अक्सर राजनीतिज्ञ ज़रूर बन जाते हैं. भारत के कुछ गड़बड़ी वाले राज्यों में नए क्षेत्रीय दलों का उदय यह दर्शाता है कि नए संघर्ष को जन्म देने के बजाय भारत के साथ एकाकार होने के लिए ही क्षेत्रीय दलों का उदय होता है. यद्यपि भारत की क्षेत्रीय अखंडता पर गंभीर खतरे मँडरा रहे हैं,लेकिन क्षेत्रीय दलों से इनका कोई लेना-देना नहीं है.

क्षेत्रीय दलों पर दूसरा आरोप यह है कि क्षेत्रीय दलों के कारण राजनैतिक अस्थिरता पैदा होती है. इस पर विचार करने से पहले यह देखना होगा कि क्षेत्रीय दलों की बहुलता और बढ़ते प्रभाव के कारण राष्ट्रीय स्तर की सरकारें सचमुच ही अस्थिर रहने लगी हैं. ऐसा लगता है कि क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय दलों को यह धमकी देकर बंधक बना रखा है कि यदि उनकी माँगें न मानी गईं तो वे सरकार को गिरा देंगे. परंतु क्षेत्रीय दलों को दोष देकर हम राजनैतिक अस्थिरता के असली स्रोत का पता लगाने में विफल हो जाते हैं.

राजनैतिक अस्थिरता क्षेत्रीय दलों के कारण नहीं, बल्कि गठबंधन की राजनीति के कारण है. जब कभी किसी सहयोगी दल का कोई भी सदस्य गठबंधन सरकार से समर्थन वापस लेता है तो सरकार गिरने का खतरा पैदा हो जाता है और वह दल सरकार से समर्थन-वापसी की धमकी देने लगता है. ऐसा इसलिए होता है कि भारत में बहुत कम राष्ट्रीय दल हैं. इनमें से एक दल आम तौर पर सरकार चलाता है और सहयोगी दल अमूमन भारी संख्या में क्षेत्रीय दल ही होते हैं और गठबंधन के ये सहयोगी दल सरकार के लिए सिरदर्द भी बन सकते हैं. यह आवश्यक नहीं है कि

जिस राष्ट्रीय दल के पास सरकार चलाने के लिए बहुमत हो वह राजनैतिक अस्थिरता पैदा नहीं कर सकता. राष्ट्रीय या क्षेत्रीय कोई भी दल राजनैतिक अस्थिरता पैदा कर सकता है. वास्तव में भारत की सबसे अधिक राष्ट्रीय पार्टी कॉन्ग्रेस ने कई बार सरकारें गिराई हैं. इसके अलावा राष्ट्रीय दलों के अंदर की गुटबाजी अलग-अलग सहयोगी दलों के बीच चलने वाले लड़ाई-झगड़ों से किसी सूरत में कम नहीं होती. ऐसी गुटबाजी के तीन उदाहरण हैं जिनके कारण पार्टी के बीच दरार पड़ने से गंभीर राजनैतिक संकट पैदा हो गया था.

क्षेत्रीय दलों को गठबंधन युग के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता. कॉन्ग्रेस के पतन और पुरानी जनता पार्टी के विघटन से यह सुनिश्चित हो गया था कि कोई भी अकेला दल अब अपने बल पर बहुमत नहीं पा सकता है. 1980 के दशक के उत्तरार्ध में और 1990 के दशक के आरंभ में कॉन्ग्रेस की चुनावी हार का लाभ भाजपा और जनता दल जैसे राष्ट्रीय दलों को ही मिला था, क्षेत्रीय दलों को नहीं. 1990 के दशक में क्षेत्रीय दलों का वास्तविक उदय तब तक नहीं हुआ था जब तक कि कॉन्ग्रेस का पतन नहीं हुआ और गठबंधन युग की शुरूआत नहीं हुई. यद्यपि क्षेत्रीय दलों को गठबंधन राजनीति का लाभ तो मिला,लेकिन वे गठबंधन राजनीति की शुरूआत के लिए ज़िम्मेदार नहीं थे.

गठबंधन सरकार अपने -आपमें अस्थिरता नहीं लाती. बहुदलीय गठबंधनों ने कई देशों में स्थायी सरकारें दी हैं, परंतु वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण इन्होंने अस्थिरता को नहीं आने नहीं दिया. उदाहरण के लिए अनुदार धार्मिक दल मध्य-दक्षिणपंथी सरकार को नहीं गिरा सकते,क्योंकि न तो वे मध्य-वामपंथी गठबंधन में शामिल हो सकते हैं और न ही ऐसे दल को सत्ता में लाने के लिए उनकी मदद कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें डर रहता है कि मतदाता इसके लिए उन्हें दंडित भी कर सकते हैं. भारत में वैचारिक प्रतिबद्धता की चुनावों में कोई भूमिका नहीं है, भारतीय चुनावों में तो व्यक्तिवाद, जातिगत आग्रह,संरक्षण और वोट की खरीद की अक्सर प्रमुख भूमिका रहती है. परिणामस्वरूप कोई भी पार्टी कभी-भी एक गठबंधन को छोड़कर दूसरे गठबंधन से हाथ मिला सकती है. उन्हें यह भय भी नहीं रहता कि वैचारिक अस्थिरता के कारण मतदाता उन्हें दंडित भी कर सकते हैं. पार्टियों के लिए अस्थिरता पैदा न करने का भी कोई कारण नहीं है, क्योंकि चुनाव के समय उन्हें इसकी कोई कीमत नहीं चुकानी पड़ती. इसलिए विशेषकर 1990 के दशक में भारत की अस्थिरता का मूल स्रोत क्षेत्रीय दलों में न होकर, गठबंधन राजनीति में रहा है,क्योंकि नीतिगत वाद-विवाद और वैचारिक प्रतिबद्धता की चुनावी राजनीति में कोई जगह नहीं है. क्षेत्रीय दल इसके लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं,लेकिन उन्होंने इस स्थिति का लाभ ज़रूर उठाया है.

भारतीय राजनीति के प्रेक्षक अक्सर हताशा की भावना के साथ भारत के सामने आने वाली चुनौतियों की लंबी सूची पेश करते हैं. इस सूची में अलगाववादी विद्रोह और गठबंधन की

अस्थिरता का समावेश तो हो सकता है,लेकिन क्षेत्रीय दलों के उदय का कोई स्थान होने की संभावना नहीं है.

ऐडम ज़िएगफ़ैल्ड ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के नफ़ील्ड क़ॉलेज में पोस्ट डॉक्टरल पुरस्कार अनुसंधान फ़ैलो हैं. आपने मैसाचूसिट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ़ टैक्नोलॉजी से वर्ष 2009 में राजनीति विज्ञान में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की थी.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>